6422

तित्थयर

जुलाई १९९२
षोड़श वर्ष : तृतीय अंक

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १६ : अंक ३

जुलाई १९९२

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सो एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

रहस्यवादनी आत्मज्ञा जगत्माता धनदेवी जी ६७

जैन श्रमण साधना : एक परिचय ७०

"चावि या भावि" ? ७५

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ७६

पुस्तक समीक्षा ६३

संकलन ६४

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ६५

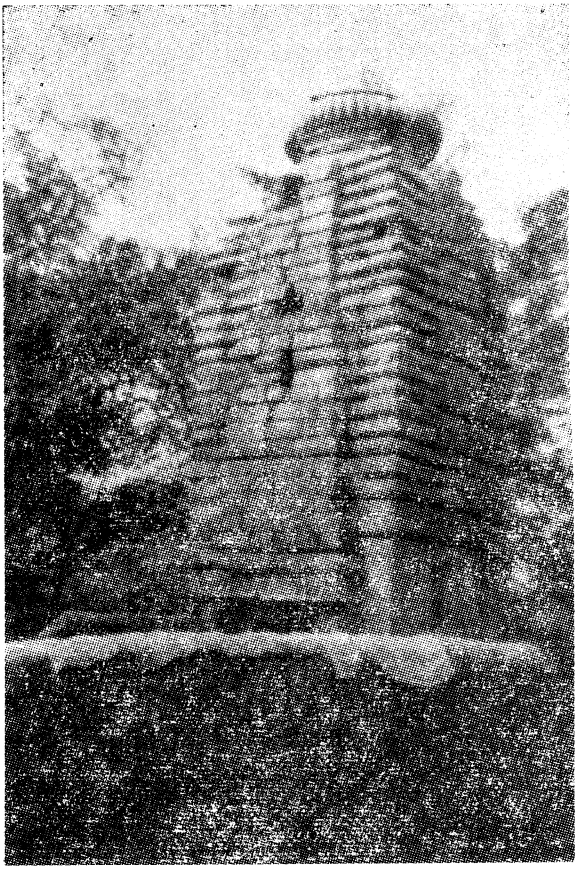

जैन मन्दिर, छड़रा

रहस्यवादिनी आत्मज्ञा जगत्माता धनदेवी जी

प्रा. प्रतापकुमार टोलिया

बात है अब से कुछ ६५ वर्ष पूर्व की। गुजरात-कच्छ के एक गाँव 'सांभराई' में एक विलक्षण बालिका का पावन जन्म हुआ। पूर्व संस्कारों की संपन्नता के कारण बाल्यावस्था से ही वह निर्मल ज्ञानपूर्ण थी।

एक दिन, चार साल की आयु में वह अपने पिता के साथ सांभराई से दूसरे गाँव पैदल जा रही थी। दोनों ओर टीलोंवाला सँकरा रास्ता आया। एक ही वाहन—गाड़ी जा सके उतनी ही चौड़ाई। पीछेसे उस प्रदेश के छोटे-से रियासती राव-राजा-का 'वेलड़ा' (वाहन), अपने रिसाले के साथ आ रहा था। बालिका धनबाई उस सँकरे मार्ग के बीचोंबीच चल रही थी। उसके पिता शिवजी सेठ तो पीछे से आ रहे वाहनों को मार्ग देने एक ओर खिसक गए, किन्तु बालिका वाहनचालकों के कई बार आवाज़ देने पर भी, हटी नहीं बीच से।

चालक ने ज़ोर की आवाज़ देकर उसे धमकाया—

"अरे बच्ची ! हट जा बीच से। तेरा दिमाग फिर गया है क्या ! अंदर राव बैठे हैं, तुझे पकड़ लेंगे।" परन्तु बालिका ने इस पर भी बिना हटे, उसी निर्भयतापूर्वक चलते हुए प्रति-प्रश्न किया—"दिमाग किसका फिर गया है मेरा या राव का ? पूछो उन से।"

और वेलड़े के भीतर बैठा हुआ राव इस सच्चाई को सुनकर चकित और भयभीत हुआ। उसने बालिका को अपने पास, एकांत में, वेलड़े के भीतर अकेली बुलाया। सभी को दूर हटा दिया। पिता शिवजी सेठ तो थरथर काँपने लगे कि बच्ची को यह सरफिरा राजा अब क्या करेगा—कहीं मारेगा, पीटेगा, पकड़ रखेगा !

बालिका धनबाई तो प्रसन्न निर्भीकता से राव के पास जा बैठकर वही बात सीधी ही उन से दोहराकर पूछने लगी—

"रावसाहब ! क्या आपका ही दिमाग नहीं फिर गया है ! सर पर नहीं, हृदय पर हाथ रखकर सच कहिये।"

और सकपकाते हुए अंतर्दोषी राजा अपने आपको अधिक छिपा नहीं सके। बालिका की आँखों के तेज और आवाज की बुलन्दी के सामने वे ढीले पड़ रहे थे। राव कुछ उत्तर दे उतने में तो ज्ञानी बालिका का उनके भीतर के गुप्त पापाशय को झकझोरनेवाला पुण्यप्रकोप प्रकट हुआ—"प्रजा के पिता

समान होते हुए भी 'रावण' जैसा काम करने जाते हुए, प्रजापुत्री पर-स्त्री का हरण करने जाते हुए, आपको शर्म नहीं आती ? क्या इस पापकर्म को आप करने नहीं जा रहें ? क्या आपके ऐसे अधम आशय के लिये मैं आप को मार्ग दूँ ?"

और अवाक् राव, इतनी छोटी-सी बालिका में साक्षात् किसी देवी का दर्शन कर उसके चरणों में झुक गया। दोष स्वीकार किया, क्षमा माँगी, वहाँ से ही लौट जाने को स्वीकार किया और जाते जाते बालिका से एकांत में दो प्रार्थनाएँ की :

"हे धनदेवी ! अपने पिता के साथ की इस यात्रा से लौटने पर मेरे महल पर आकर मुझे धर्म सुनाना और मेरे इस पापाशय को किसी के सामने प्रकट न कर गुप्त रखना।" बालिका ने दोनों बातें सहर्ष स्वीकार की और उसे क्षमा कर वहीं से लौटाया।

इधर काँपते हुए पिता के होश तब ठिकाने पर आये जब पुत्री धनबाई हँसती हुई उनके पास लौटी और वे विशेष स्तम्भित रह गये जब राव का सारा काफिला वहीं से लौटा। बालिका से सारी घटना और इस लौटने का कारण जानने में वे असमर्थ और निराश रहे। बालिका बिलकुल मौन रही।

वे दोनों अपने गंतव्य को चल पड़े। बालिका धनदेवी की बाट जोह रहे राव का जब उसके गाँव से लौटने पर फिर बुलावा आया, तब राव के शिकार, जुआ, परस्त्रीगमन आदि सात व्यसनों का त्याग करवा कर धनदेवी ने उसे "भगत" जैसा परिवर्तित कर दिया। तभी पिता को बालिका की कई अद्भुत विलक्षणता का पता चला, परन्तु वह स्वयं तो तब भी थी नितान्त मौन !

तब से ही ऐसे अनेक अद्भुत प्रसंगों, अगम्य अनुभवों, गूढ़ संकेतों, जीवन रहस्यों एवं अगमचेती भरे निर्देशों के कारण आसपास के लोग बालिका धनबाई से एक ओर से चकित-स्तम्भित थे तो दूसरी ओर से संदेह भरे। उन्हें 'भूतड़ी' और 'जादुगरनी' जैसे उपनाम भी अज्ञानवश दिये गये किन्तु उनके भीतर की निर्मल ज्ञान संपदा की पहचान पाने में वे सब सर्वथा असमर्थ रहे।

ऐसे विलक्षण बाल-जीवन, कौमार्य एवं गृहस्थाश्रम के ढेर से प्रसंग उसके अद्वितीय, अलौकिक धर्म-जीवन को व्यक्त करते हैं। ये सारे उनकी जीवनी में वर्णित हैं।*

---

* द्रष्टव्य : श्री भँवरलाल नाहटा लिखित "आत्मद्रष्टा मातुश्री धनदेवी जी"।

तत्पश्चात्, पावापुरी में सं. २०१० में समाधि मरण प्राप्त विदुषी साधिका कु. सरला की देवलोकगत आत्मा के द्वारा प्रेरित, धनदेवी जी के ही संसारी भतीजे श्री भद्रमुनि (बाद में योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानन्दघनजी) की प्रेरणा एवं निश्रा में गठित उनका अद्वितीय अखंड आत्मसाधनामय जीवन जैन-साधना "रत्नत्रयी" की चरमसीमा है।

पूर्वजन्म की संस्कार संपदा एवं वर्तमान जीवन की ऐसी अनेक साधनाओं से उच्च सिद्धियाँ—लब्धियाँ प्राप्त करने पर भी वे जीवन भर गुप्त, निरहंकारी, विनम्र एवं अत्यन्त विनयशील रहीं।

"लघुता में प्रभुताई है, प्रभुता से प्रभु दूर" यह संतवचन उन्होंने सतत अपनी दृष्टिसन्मुख रखा था। तदनुसार उन्होंने स्वयं कहीं भी अपनी सिद्धियों का आसार आने नहीं दिया। उनके रहस्यमय जीवन के इर्द-गिर्द जो भी घटता गया वह अपने आप, सहज और अनायास ही।

श्रीमद् राजचन्द्र जी, जो कि उनके परम आराध्य थे उनके सुवर्ण वचन "जहाँ सर्वोत्कृष्ट शुद्धि, वहाँ सर्वोत्कृष्ट सिद्धि" के अनुसार पूज्य माताजी के बाह्यांतर परिशुद्ध जीवन की सर्वोत्कृष्ट सिद्धि थी—"आत्मा को लगातार देह से भिन्न देख पाने का भेदज्ञान!" "केवल निज-स्वभाव का अखंड वर्ते ज्ञान" वाली उनकी अंतर्दशा थी।

इस भेदज्ञान—आत्मज्ञान को उन्होंने अपने व्यवहार जीवन के पद-पद पर आत्मसात् कर अभिव्यक्त किया और अपने सम्पर्क में आनेवाले सभी को उस मार्ग की ओर मोड़ा—"मैं देहभिन्न आत्मा हूँ" की सतत 'पकड़' करवाते हुए।

अपने शरणागत हजारों मनुष्यों को ही नहीं, पशु-पंछी, कीट-पतंग, जीव-जन्तुओं को भी अपनी करुणा से उद्धार कर अपने अधीनस्थ श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी (कर्नाटक) को अनवरत रूप से विकसित करती हुई, विदेहस्थ सद्गुरुदेव सहजानन्दघनजी प्रदात "जगत्माता" के ज्ञान-वात्सल्य-करुणा भरे विरुद को अक्षरशः साकार करती वह अभी अभी ६५ वर्ष की देहायु में ही अपनी भावी भूमि महाविदेह क्षेत्र को आत्मसमाधिपूर्वक प्रस्थान कर गई "आत्मभावना" का आहलेक जगाती हुई, अनेकों को अप्रत्याशित परम विरह में डुबाती हुई, चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शनिवार दि. ४.४.१९९२ की रात को ९.१५ बजे। ॐ शांति।

जैन श्रमण साधना : एक परिचय

डा० सुभाष कोठारी

[पूर्वानुवृत्ति]

परीषह :

मुनि जीवन के आचार-विचार को यथा रूप पालन करते हुए अचानक कोई संकट उपस्थित होता है, तो उसे समभावपूर्वक सहन किया जाता है। इसी को परीषह कहते हैं। उत्तराध्ययनसूत्र व समवायांगसूत्र में बाईस परीषहों का उल्लेख है :[३१]

१. क्षुधा परीषह —भूख लगने पर भी नियम विरुद्ध आहार न लेना।
२. तृषा परीषह —प्यास लगने पर भी नियम विरुद्ध सचित्त जल न पीना।
३. शीत परीषह —वस्त्र की कमी से शीत लगने पर भी ताप ग्रहण नहीं करना।
४. उष्ण परीषह —गर्मी लगने पर हवा, पानी व पंखे का प्रयोग नहीं करना।
५. दंशमशक परीषह —डांस व मच्छर काटने पर क्रोध नहीं करना।
६. अचेल परीषह —वस्त्र के अभाव की चिन्ता नहीं करना।
७. अरतिपरीषह —सुख-सुविधा का अभाव होने पर चिन्तन नहीं करना।
८. स्त्री परीषह —स्त्री संसर्ग की इच्छा नहीं करना।
९. चर्या परीषह —पद यात्रा में कष्ट होने पर भी नियम के विरुद्ध नहीं ठहरना।

---

३१ (क) 'बावीसं परीसहा पण्णत्ता तं जहा—दिगिंछापरिसहे, पिवासापरिसहे सीतपरिसहे, उसिणपरिसहे, दंसमसगपरिसहे, अचेलपरिसहे, अरइपरिसहे इत्थीपरिसहे, चरियापरिसहे, निसीहिआपरिसहे, तिज्जापरिसहे, उक्कोसपरिसहे, वहपरिसहे, जायणापरिसहे, अलाभपरिसहे, रोगपरिसहे, तणफासपरिसहे, जल्लपरिसहे, सक्कारपुरक्कारपरिसहे, पण्णापरिसहे, अण्णाणपरिसहे, दंसणपरिसहे।'

—समवाए (सुत्तागमे) सूत्र पृ० ३३५

(ख) उत्तराध्ययनसूत्र, २।२

१०. निषधा परीषह —स्वाध्याय के लिये विषम भूमि हो तो खेद नहीं करना।

११. शय्या परीषह — विषम भूमि व तृण आदि न हो तो शून्यगृह में ठहरना।

१२. आक्रोश परीषह —दुष्टों द्वारा प्रताड़ित करने पर सहनशीलता रखना।

१३. वध परीषह —यदि मुनि को कोई लकड़ी आदि से मारे तो भी समभाव रखना।

१४. याचना परीषह —भिक्षावृत्ति से कभी-कभी सम्मान को चोट पहुँचती है, तो भी साधु मर्यादा का पालन करें।

१५. अलाभ परीषह —वस्त्र-भोजन पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं होने पर भी सहनशीलता से उस कष्ट को सहन करें।

१६. रोग परीषह —शरीर में रोग होने पर आवश्यक चिकित्सा नहीं मिलने तक शांतचित्त रहना।

१७. तृण परीषह —सोते व चलते समय तृण, कांटा आदि चुभने से वेदना को समभाव से सहन करना

१८. मल परीषह — वस्त्र व शरीर दूर तक चलने से गंदा हो जाने पर भी हीन भाव नहीं रखना।

१९. सत्कार परीषह — जनता द्वारा सम्मान होने पर प्रसन्नता का अनुभव नहीं करना।

२०. प्रज्ञा परीषह —ज्ञान का अभिमान न करना। बुद्धिमान होने पर वाद-विवाद हो तो खिन्न नहीं हो कि ऐसे से तो अज्ञानी ही अच्छा है।

२१. अज्ञान परीषह —मन्द बुद्धि होने पर भी साधना में लगे रहना।

२२. दर्शन परीषह —अन्य मत व सम्प्रदायों के आडम्बर को देखकर स्वधर्म में अश्रद्धा नहीं करना।

इन बाईस परीषहों को सहन करना चाहिए, ये मुक्ति की ओर ले जाने में सहायक तत्त्व हैं।

समाचारी :

विशेष रूप से पालन करने योग्य नियम समाचारी कहे जाते हैं। इसको

दिनचर्या कहा जाता है। ये दस प्रकार के बताये गये हैं।[३२] आवश्यकीय, नैषेधिकी, आपृच्छना, प्रतिपृच्छना, छन्दना, इच्छाकार, मिथ्याकार, प्रतिश्रुत तथ्यकार, गुरुपूजा अभ्युत्थान, उपसंपदा।

अनाचार :

श्रमण जीवन को शास्त्रोक्त विधि से, नियमानुसार निम्नांकित ५२ अनाचारों से बचते रहने का विधान किया गया है।[३३] ये ही वे नियम हैं जिनके सम्यक् पालन से जनमानस में श्रद्धा व चारित्र की छाप छोड़ी जाती है और इन्हीं अनाचारों का सेवन करने से श्रमण सर्वत्र तिरस्कृत; कलंकित व असंयमी माना जाता है।

१—जो वस्त्र, आहार, स्थान साधु के लिए बनाया या खरीदा गया हो, उसका उपभोग करना।
२—साधु के लिए खरीदी गई कोई भी वस्तु साधु ग्रहण करे।
३—आमंत्रण स्वीकार कर किसी के घर से आहार लेना।
४—धर्मस्थान में या साधु के सामने लाकर दी हुई वस्तु लेना, रखना।
५—रात्रि में अन्न, पानी, खाने की वस्तु या स्वादयुक्त खाने की वस्तु रखना या खाना।
६—हाथ-पाँव धोना या पूर्ण स्नान करना।
७—सुगन्धित पदार्थों का सेवन।
८—किसी भी प्रकार की माला को पहनना।
९—हवा के लिए पंखे, पुट्ठे आदि का उपयोग।
१०—घी, तेल, गुड़, शक्कर आदि रात्रि में अपने पास रखना।
११—गृहस्थ की थाली, कटोरी आदि में भोजन करना।
१२—राजा के लिए बना हुआ आहार लेना।
१३—दान शालाओं में जाकर आहार लेना।
१४—बिना कारण तेल मर्दन करना।
१५—दन्त मंजन करना, राख या मिस्सी रगड़ना।
१६—गृहस्थ से कुशल-क्षेम पूछना।
१७—कांच, पानी या तेल में मुँह देखना।
१८—जुआ खेलना।

---

३२ उत्तराध्ययनसूत्र, २६।२-४
३३ दशवैकालिक, अध्याय ३

१९—चौपड़, शतरंज आदि खेलना।
२०—सिर पर छतरी या छत्र धारण करना।
२१—बिना कारण औषधि लेना या चिकित्सक को दिखलाना।
२२—जूते, मोजे आदि पहनना।
२३—दीपक आदि जलाना।
२४—जिसके घर ठहरे हैं उस घर का आहार पानी लेना।
२५—खाट, पलंग, कुर्सी आदि किसी भी बुने हुए आसन पर बैठना।
२६—रोग, तपस्या या वृद्धावस्था के अतिरिक्त कारण से गृहस्थ के यहाँ बैठना।
२७—शरीर पर पीठी मलना।
२८—स्वयं गृहस्थ की सेवा करना या गृहस्थ से सेवा करवाना।
२९—गृहस्थ से जातीय सम्बन्ध जोड़कर आहार लेना।
३०—गर्म पानी जिस बर्तन में किया जाय वह ऊपर तक गर्म न हो फिर भी पानी लेना।
३१—रोग, उपसर्ग या परीषह आने पर गृहस्थावस्था या पारिवारिक जनों को याद करना।

३२—मूली	३३—अदरक	३४—गन्ने का टुकड़ा
३५—सूरण	३६—मूल जड़ी	३७—फल
३८—बीज	३९—संचलनमक	४०—सैंधानमक
४१—सादानमक	४२—रोमदेश का नमक	४३—समुद्री नमक

४४—धूल युक्त नमक ४५—काला नमक का उपयोग करना।
४६—शरीर या वस्त्र को धूप देना।
४७—बिना कारण जानबूझकर वमन करना।
४८—गुह्यस्थान की शोभा करना।
४९—बिना कारण जुलाब लेना।
५०—आँखों की शोभा के लिए अंजन या सुरमा लगाना।
५१—दाँत को रगड़ना।
५२—व्यायाम—कसरत आदि करना।

इस प्रकार ५२ अनाचारों से यह स्पष्ट है कि साधु का जीवन सीधा-सादा व सरल होना चाहिए। जो साधु इन ५२ अनाचारों से बचकर अपना संयम पालन करते हैं वे ही साधु-जीवन का यथार्थ में पालन करते हैं।

इस प्रकार उपरोक्त जैन श्रमण की साधना-पद्धति पर शास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि जैन परम्परा के चतुर्विधसंघ में साधु को जो सर्वप्रथम सम्मानजनक स्थान प्रदान किया गया है वह उनके वेश से नहीं आचरण से दिया गया है।

सच्चा श्रमण वही है जो मन, वचन और शरीर से हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का पूर्ण रूप से त्याग करते हैं, कष्टों, उपसर्गों व परिषहों को समभाव पूर्वक सहन करते हैं, शारीरिक ममत्व का त्याग करते हैं, सभी अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियों में समता युक्त बने रहते हैं, स्वयं वीतराग की वाणी के अनुसार आचरण करते हैं और दूसरों को भी उनके अनुसार आचरण करने का उपदेश देते हैं। वे पाँच समिति, तीन गुप्ति के आराधक होते हैं, आदर, सत्कार, वन्दन, निन्दा, प्रशंसा से प्रभावित नहीं होते हैं, मंत्र-तंत्र आदि विद्याओं के जानकार होते हुए भी उनका उपयोग नहीं करते हैं, बाईस परीषहों को जीतते हैं और ५२ अनाचारों से बचकर संयम-जीवन का निर्वाह करते हैं।

"चावि या भावि" ?

डा० ऋषभचन्द्र फौजदार

नियमसार आचार्य कुन्दकुन्द की श्रमणाचार विषयक महत्वपूर्ण कृति है। इस ग्रन्थ पर पद्मप्रभमलधारिदेव की गद्य-पद्य मिश्रित तात्पर्यवृत्ति नामक एक मात्र प्राचीन संस्कृत टीका है, जो उपलब्ध तथा प्रकाशित है। डा० ज्योति प्रसाद जैन के अनुसार इस ग्रन्थ पर भी बालचन्द्रकृत कन्नड टीका है। (जैन एण्टीक्वैरी, भाग-३७ किरण-२, दिसम्बर १९८४, पृ० १२)। किन्तु इसके समर्थन में यहाँ कोई सन्दर्भ नहीं है। अन्य किसी विद्वान ने इस विषय में अब तक कुछ नहीं लिखा। बीसवीं सदी में तात्पर्यवृत्ति संस्कृत टीका पर आधारित हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड, मराठी आदि भाषाओं में टीकाएँ और अनुवाद हुई हैं। मूल प्राकृत गाथाओं के हिन्दी, गुजराती तथा कन्नड में पद्यानुवाद भी किये गये हैं। गणिनी आर्यिका ज्ञानमतीजी ने नियमसार पर "स्याद्वाद चन्द्रिका" नामक संस्कृतटीका लिखी है। यह टीका प्राकृत खण्डान्वयी पद्धति पर की गई है। इसमें ग्रन्थान्तरों के यथोचित सन्दर्भ सप्रमाण दिये गये हैं।

नियमसार का पहली बार सन् १९१६ में बम्बई से प्रकाशन हुआ। इसका सम्पादन ब्र० शीतलप्रसाद ने किया है। इसमें गोधों के दिगम्बर जैन मन्दिर, जयपुर की एक हस्तलिखित पाण्डुलिपि का उपयोग किया गया है। बाद में नियमसार के अनेक संस्करण निकले। इनकी संख्या आज बीस तक पहुँच गई है। ये प्रकाशन पहले संस्करण के पुनर्मुद्रण मात्र हैं। पहले संस्करण में छपे मूल प्राकृत पाठ में जो त्रुटियाँ रह गई थीं, बाद के संस्करणों में वे यथावत् सुरक्षित हैं। कुछ नयी त्रुटियाँ भी जुड़ी हैं। मुद्रण सम्बन्धी अशुद्धियाँ अलग हैं।

यहाँ नियमसार की ३२वीं गाथा में आये "चावि" पाठ पर विचार करना अपेक्षित है। विचारणीय मूल गाथा इस प्रकार है—

जीवादु पोग्गलादो णंतगुणा चावि संपदा समया।
लोयायासे संति य परमट्ठो सो हवे कालो॥

—नियमसार, गाथा ३२

इस गाथा की संस्कृत-छाया इस प्रकार की गयी है—

जीवात् पुद्गलतोनंतगुणाश्चापि संप्रति समयाः।
लोकाकाशे संति च परमार्थः स भवेत्कालः॥

प्रकाशित संस्करणों में उक्त गाथा का हिन्दी अर्थ देखें—

अब जीव से और पुद्गल से भी अनन्त गुने समय हैं और लोकाकाश में जो कालाणु हैं, वह परमार्थ काल है।

संस्कृत टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव ने गाथा की टीका इस प्रकार की है—

"मुख्यकालद्रव्यस्वरूपाख्यानमेतत्। जीवराशेः पुद्गलराशेः सकाशादनन्तगुणाः। के ते? समयाः। कालाणवः लोकाकाशप्रदेशेषु पृथक-पृथक तिष्ठन्ति, सः कालः परमार्थः इति।"

प्रसंगानुसार यहां पूर्व गाथा का अवलोकन आवश्यक है—

समयावलिभेदेण दु दुवियप्पं अहव होइ तिवियप्पं।
तीदो संखेज्जावलि हदसंठाणप्पमाणं तु॥ गाथा ३१

अर्थात् समय और आवलि के भेद काल के दो भेद हैं। अथवा भूत, भविष्य और वर्तमान ये तीन भेद होते हैं। और अतीतकाल संख्यात आवलि कृत संस्थान प्रमाण है।

यहाँ व्यवहारकाल के समय और आवलि दो भेद कहे गये हैं। "तिवियप्पं" शब्द से भूत, भविष्य और वर्तमान व्यवहार काल तीन प्रकार का व्यवहार कहा है। गाथा के उत्तरार्ध में अतीतकाल (भूत) का परिमाण बताया है। इससे प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार को आगे की ३२वीं गाथा में भविष्य और वर्तमान काल का स्वरूप तथा परिमाण बताना अभीष्ट है। किन्तु यहाँ मूल प्राकृत गाथा में "चावि" पाठ होने के कारण अर्थ संगति नहीं बैठती। यदि "चावि" के स्थान पर "भावि" पाठ स्वीकार किया जाये तो अर्थसंगति बैठ जाती है। पूर्वापर गाथाओं का परस्पर सम्बन्ध दृढ़ हो जाता है और प्रतिपाद्य विषय की स्पष्टता में भी सन्देह नहीं रह जाता।

नियमसार के २० संस्करण प्रकाशित हुए हैं। मैंने सभी देखें हैं। दो संस्करणों में मूल प्राकृत गाथाएँ नहीं हैं। वे दोनों भावानुवाद—पद्यानुवाद मात्र हैं। केवल तीन संस्करणों में "भावि" पाठ मिलता है। शेष में "चावि" पाठ है। नियमसार के सम्पादक विद्वानों में पं० पन्नालाल साहित्याचार्य का ध्यान सर्वप्रथम इस ओर गया। उन्होंने इस सन्दर्भ में "कुन्दकुन्द भारती" की प्रस्तावना में लिखा है। वे इसे सम्पादकों की असावधानी का परिणाम मानते हैं। आर्यिका ज्ञानमती माता जी ने तात्पर्यवृत्ति संस्कृतटीका का सम्पादन और अनुवाद किया है, वहाँ इस प्रसंग पर विचार नहीं किया है।

३२वीं गाथा के फुटनोट में "भावि" पाठान्तर अवश्य दिया है। किन्तु पाण्डुलिपि का विवरण संस्करणों में नहीं है। माता जी ने अपनी 'स्याद्वाद-चन्द्रिका' नामक संस्कृत टीका में उक्त पाठ पर विचार किया है तथा मूल में "भावि" पाठ अपनाया है। यहाँ उन्होंने "भावि" पाठ का औचित्य भी दर्शाया है। आश्चर्य इस बात का है कि स्वयं माता जी ने तात्पर्यवृत्ति संस्करण में मूल पाठ "चावि" स्वीकार किया है और इसी के संस्करण के हिन्दी पद्यानुवाद का आधार "भावि" पाठ को बनाया है। पद्यानुवाद गाथा के साथ में दिया गया है। आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने अपने पद्यानुवाद के साथ मूल पाठ "चावि" रखा है तथा पद्यानुवाद का आधार "भावि" पाठ को बनाया है। उक्त सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि विद्वानों और साधुओं का ध्यान तो इस ओर गया है। किन्तु उन्होंने इस प्रसंग पर गंभीरता से विचार नहीं किया या विचार करना उचित नहीं समझा। बाद के संस्करण में इसका परिमार्जन आवश्यक था, किन्तु नहीं हो पाया।

देवनागरी लिपि की तेरह (१३) हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ मेरे हाथ में हैं। उनमें से तीन में "भावि" पाठ है। शेष प्रतियों में "चावि" है। कुछ प्रतियों में "वावि" पाठ है, जो लिपि दोष के कारण "चावि" से आया है। देवनागरी लिपि की सर्वाधिक प्राचीन प्रति संवत् १६२३ की है। प्राचीन कन्नड लिपि की एक ताडपत्रीय प्रति मुझे ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, उज्जैन से प्राप्त हुई है। प्रति में लेखनकाल अंकित नहीं है। किन्तु लिपि के आधार पर यह १५वीं सदी की प्रतीत होती है। इसमें "भावि" पाठ सुरक्षित है, किन्तु संस्कृत-छाया "चापि" की गई है।

यह विचारणीय है कि सभी हस्तलिखित प्रतियों में "चावि" तथा "भावि" दोनों पाठों की संस्कृत-छाया "चापि" ही प्राप्त होती है। तात्पर्य-वृत्तिकार पद्मप्रभमलधारिदेव यहाँ मौन हैं। वे गाथा के पूर्वार्द्ध को उत्तरार्द्ध के साथ जोड़ते हुए व्याख्या करते हैं। ग्रन्थकार को गाथा के पूर्वार्द्ध में व्यवहारकाल का कथन अभीष्ट है और उत्तरार्द्ध में परमार्थ—निश्चयकाल का। टीकाकार का इस ओर ध्यान नहीं गया प्रतीत होता है।

बारहवीं-तेरहवीं सदी में देवनागरी लिपि में च और भ का जो स्वरूप था, उसके अनुसार लेखन में थोड़ी-सी असावधानी होने पर भ का च होना अस्वाभाविक नहीं है। देवनागरी लिपि में भ नीचे खुला रहता है। यदि नीचे का खुला भाग परस्पर में मिल जाये तो च बन जाता है। च और भ

की यही स्थिति कन्नड लिपि में है। यदि भ का नीचे खुला हुआ भाग जुड़ जाय तो च हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि टीकाकार के सामने नियमसार की जो पाण्डुलिपि रही होगी उसमें "भावि" पाठ होने की प्रबल संभावना है। टीका के बाद की कतिपय प्रतियों में "भावि" पाठ सुरक्षित है। इससे भी उक्त सम्भावना पुष्ट होती है। हस्तलिखित प्रतियों में "चावि" और "भावि" दोनों पाठों की संस्कृत-छाया "चापि" ही मिलती है। इसका कारण लिपि दोष या लिपि को समझने में भूल होना सम्भव है। मेरे विचार से यहाँ "भावि" पूर्णतया युक्तिसंगत है। इसे स्वीकार करने में पारम्परिक या सैद्धान्तिक कठिनाई भी नहीं आती। अब इसका ध्यान रखा जाना चाहिये। नियमसार और उसकी तात्पर्य वृत्ति टीका के कुछ अन्य स्थल भी विचारणीय हैं। उन पर आगे विचार किया जायेगा।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

तृतीय सर्ग

वैताढ्य पर्वत के आदित्यपुर नामक नगर में एक राजा राज्य करते थे। उनकी पत्नी का नाम था केतुमती। उनके पवनंजय नामक एक पुत्र था जो बल और आकाशगमन में पवन की ही भाँति विजयी था।

उस समय भरतक्षेत्र के समुद्रतीरवर्ती दन्ती पर्वत पर महेन्द्र नामक एक नगर था। वहाँ महेन्द्र नामक एक विद्याधर राजा राज्य करते थे। उनकी पत्नी का नाम था हृदय सुन्दरी। उसने अरिदमन आदि एक सौ पुत्रों को जन्म देने के पश्चात् अंजना सुन्दरी नामक एक कन्या को जन्म दिया। जब वह यौवन को प्राप्त हुयी तो उसके पिता को उसके योग्य वर के लिए चिन्ता हुयी। मन्त्रियों ने उसके योग्य हजार विद्याधरों के नाम बताए। महेन्द्र के आदेश पर मन्त्रीगण उन विद्याधर कुमारों के चित्र कपड़े पर अंकित करने लगे और उन्हें दिखाने लगे। उनमें एक मन्त्री ने एक दिन विद्याधर राज हिरण्याभ और सुमनसा के पुत्र विद्युत्प्रभ और प्रह्लाद और केतुमती के पुत्र पवनंजय का मनोहर चित्र अंकित कर उन्हें दिखाया। उन दोनों चित्रों को देखकर महेन्द्र बोले, 'ये दोनों विद्याधर कुमार रूपवान और कुलीन हैं। अंजना के लिए इनमें किसे चुनें?'

मन्त्री बोला, 'राजन्, नैमित्तिकों ने मुझे बताया था कि विद्युत की भाँति प्रभायुक्त विद्युत्प्रभ अट्ठारह वर्ष पूर्ण होने पर मोक्ष प्राप्त कर लेगा और प्रह्लाद-पुत्र पवनंजय दीर्घजीवी होगा। इसलिए अंजना सुन्दरी के योग्य वर पवनंजय ही है।'

उस समय समस्त विद्याधर राजा अपने-अपने परिवार सहित खूब धूमधाम से नन्दीश्वर द्वीप की यात्रा करते थे। इसी प्रकार की एक यात्रा में प्रह्लाद ने महेन्द्र को देखा और उनके पास जाकर अंजना सुन्दरी को अपने पुत्र पवनंजय के लिए याचना की। महेन्द्र ने स्वीकार कर लिया क्योंकि वे तो यही चाहते थे। प्रह्लाद की याचना तो निमित्त मात्र थी। आज से तीसरे दिन मानस सरोवर के तट पर उनका विवाह करेंगे तय कर वे अपने-अपने

राज्य को लौट गए। महेन्द्र और प्रह्लाद अपने परिवार सहित मानस सरोवर के तट पर अवस्थित हुए।

पवनंजय ने अपने मित्र प्रहसित से पूछा—'मित्र क्या तुमने कभी अंजना सुन्दरी को देखा है?'

प्रहसित ने हँसते हुए जवाब दिया—'हाँ देखा है। वह रम्भादि अप्सराओं से भी अधिक सुन्दर है। यह तो तुम उसका रूप देखकर ही समझ जाओगे। मनुष्य तो दूर स्वयं बृहस्पति भी उसके रूप का वर्णन नहीं कर सकते।'

पवनंजय बोले, 'मित्र, विवाह का दिन तो बहुत दूर है और मेरा हृदय उसे देखने को उतावला हो रहा है। प्रियतमा को देखने के लिए उत्सुक पुरुष के लिए एक घण्टा भी एक दिन के समान होता है और एक दिन एक महीने के समान। अभी तो विवाह के तीन दिन बाकी है।'

प्रहसित बोला, 'मित्र, धैर्य धरो। आज रात को ही हम उसके प्रासाद में उपस्थित होंगे। हम उसे गुप्त रूप से देखेंगे।'

तदनुसार वे लोग रात के समय आकाश पथ से अंजना सुन्दरी के प्रासाद में उपस्थित हुए और गुप्तचरों की भाँति आड़ में खड़े होकर अंजना सुन्दरी को देखने लगे। उस समय बसन्त तिलका नामक एक सखी अंजना से कह रही थी 'तूने अपने योग्य पवनंजय-सा पति प्राप्त किया है।' यह सुनकर दूसरी सखी मिश्रका बोली, 'सखी, विद्युत्प्रभ-से वर की बात न कर तू क्या दूसरे की प्रशंसा कर रही है। वह इसी जीवन में मुक्त होगा।' बसन्त तिलका बोली, 'हे मुग्धा, तू कुछ नहीं जानती—विद्युत्प्रभ-सा कम आयु वाला व्यक्ति क्या हमारी स्वामिनी के योग्य वर होता?' मिश्रका बोली, 'तू बड़ी मन्दबुद्धि है। अमृत अल्प होने पर भी श्रेष्ठ है, विष अधिक होने पर भी किस काम का?'

दोनों सखियों का यह वार्तालाप सुनकर पवनंजय सोचने लगे, विद्युत्प्रभ अंजना को अवश्य ही प्रिय है तभी वह द्वितीय सखी को उसकी प्रशंसा करने से रोक नहीं रही है। यह बात मन में आते ही अन्धकार में जैसे निशाचरों का उदय होता है उसी प्रकार उसके हृदय में क्रोध उत्पन्न हो गया। वह तत्क्षण तलवार निकाल कर यह कहते हुए आगे बढ़ा, 'जो विद्युत्प्रभ की प्रशंसा कर रही है और जो सुन रही है दोनों को ही मैं इसी समय यमपुर भेज दूँगा?' प्रहसित ने मित्र को हाथ पकड़ कर रोक लिया। बोला, 'क्या तुम नहीं जानते स्त्री अपराधिनी होने पर भी गाय की भाँति अवध्य है। फिर अंजना

सुन्दरी तो एकदम निरपराध है। वह सहज लज्जावश ही अपनी सखी को रोक नहीं सकी।'

प्रहसित द्वारा रोक दिए जाने पर वे दोनों पुनः आकाश पथ से अपने स्थान को लौट आए। पवनंजय को रात में नींद नहीं आयी। समस्त रात्रि जागते हुए दुःखित हृदय से नाना प्रकार की चिन्ता करने लगा।

दूसरे दिन सुबह उसने प्रहसित से कहा, 'मित्र, ऐसी स्त्री से विवाह करना व्यर्थ है। कारण सामान्य सेवक भी यदि विरक्त हो तो वह आपत्ति का कारण होता है। फिर विरक्त पत्नी का तो कहना ही क्या? अतः चलो हम इस कन्या का परित्याग कर स्वनगर को लौट जाएँ। कारण जो खाद्य स्वयं को अच्छा नहीं लगे वह कितना ही स्वादिष्ट क्यों न हो मुझे उससे क्या?'

ऐसा कहकर पवनंजय जाने के लिए प्रस्तुत हुआ। प्रहसित ने उसको पकड़कर रखा और समझाने लगा। 'जिस कार्य को करेंगे कहकर स्वीकार कर लिया जाता है उस कार्य को पूर्ण किए बिना परित्याग करना महापुरुषों को शोभा नहीं देता। फिर अनुलंघ्य गुरुजनों ने जिसे स्वीकार कर लिया उसका उल्लंघन कर सकोगे? गुरुजन यदि अर्थ के विनिमय में या ऐसे ही किसी को दे दे तो भी सत्पुरुषों के लिए वही प्रमाण अथवा मान्य है। इसके लिए कोई दूसरी राह नहीं होती। फिर इस विषय में अंजना सुन्दरी का तो किंचित-मात्र भी दोष नहीं है। मेरे मित्र का हृदय तो उस पर इस प्रकार दोष का आरोप करके ही दूषित हो गया है। तुम्हारे और उसके माता-पिता प्रख्यात हैं अतः स्वेच्छाचारी होकर यदि तुम चले जाओगे तो उन्हें लज्जित होना होगा। यह क्यों नहीं सोचते?'

प्रहसित की बात सुनकर हृदय में शल्य रहते हुए भी पवनंजय वहाँ रह गए।

निश्चित दिन अंजना सुन्दरी और पवनंजय का विवाह हो गया। खूब धूमधाम हुआ। यह विवाहोत्सव दोनों ओर के माता-पिता के लिए कमल के लिए चन्द्र की भाँति आह्लादकारी हुआ। महेन्द्र द्वारा पूजित प्रह्लाद स्वजनों सहित वर-वधू को लेकर सानन्द स्वनगरी को लौट गया। वहाँ उसने अंजना सुन्दरी के लिए सात मंजिला महल वाला एक सुन्दर प्रासाद दिया। देखकर लगा कि मानो स्वर्ग का विमान ही पृथ्वी पर अवतरित हुआ है। किन्तु पवनंजय ने अंजना सुन्दरी की ओर देखा तक नहीं, न ही उससे बात की। कारण मानी पुरुष अपना अपमान ऐसे ही नहीं भूल जाता। चन्द्रहीन रात्रि

की भाँति पवनंजयहीन अंजना अश्रुजल में डूबकर अस्वस्थ-सी दिन व्यतीत करने लगी। पर्यंक पर सोयी अंजना को बार-बार पार्श्व बदलते हुए एक रात्रि एक वर्ष-सी प्रतीत होने लगी। अनन्य हृदया वह कमलमुखी अपने स्वामी का चित्र हृदय में धारण कर किसी प्रकार दिन व्यतीत करने लगी। उसकी सखियों के बार-बार मीठी बातें बोलने पर भी हेमन्त ऋतु में जिस प्रकार कोयल नहीं बोलती उसी प्रकार वह अपना मौन भंग नहीं करती।

इस प्रकार अनेक दिन व्यतीत होने पर एक दिन रावण का दूत आकर प्रह्लाद से बोला, 'दुर्मति वरुण राक्षसपति रावण के प्रति बैर रखता है और उनका आधिपत्य स्वीकार नहीं करता। उसे आधिपत्य स्वीकार करने को कहने पर अपने भुजदंड दिखाकर कहता है—'कौन है ये रावण? वह मेरा क्या कर सकता है? मैं इन्द्र या वैश्रमण नहीं हूँ, न ही नलकुवर सहस्रांशु, मरुत्, यम या कैलासगिरि। मैं वरुण हूँ। देवाधिष्ठित चक्ररत्न पर यदि वह गर्वित है तो यहाँ आकर अपनी शक्ति प्रदर्शित करे। उसके चिरकाल संचित गर्व को मैं क्षण भर में नष्ट कर दूँगा।'

'यह सुनकर कुपित रावण ने युद्ध छेड़ दिया है और समुद्र जिस प्रकार तट पर स्थित पर्वत को घेर लेता है उस प्रकार उसके नगर को घेर लिया है। इस पर वरुण भी क्रुद्ध होकर राजीव और पुण्डरीक नामक पुत्रों सहित नगर से बाहर निकला और युद्ध करने लगा। वरुण के वीर पुत्र महायुद्ध कर खर और दूषण को बाँधकर अपने नगर में ले गए। इससे राक्षस सेना छत्रभंग हो गयी। इस जय से कृतार्थ होकर वरुण भी अपने नगर को पुनः लौट गया है। इसलिए रावण ने प्रत्येक विद्याधर राजाओं के पास दूत भेजा है। इसी प्रकार मैं भी आपके पास आया हूँ।'

दूत की बात सुनकर प्रह्लाद जब रावण की सहायता के लिए जाने की तैयारी करने लगे तब पवनंजय उनके पास आए और बोले, 'पिताजी आप यहीं रहें। मैं जाकर रावण की इच्छा पूरी करूँगा। मैं भी तो आपका ही पुत्र हूँ।' इस भाँति आग्रहपूर्वक पिता की सम्मति लेकर सबसे विदा होकर पवनंजय यात्रा के लिए प्रस्तुत हुए। अंजना पति की युद्ध यात्रा की खबर सुनकर उत्कंठित हुयी और जिस प्रकार आकाश से देवी उतरती है उसी प्रकार प्रासाद शिखर से नीचे उतरी। वह द्वार के निकट स्तम्भ का सहारा लिए पुतली की तरह खड़ी होकर व्याकुल हृदय और निर्निमेष नेत्रों से राह देखती रही।

पवनंजय ने जाते समय अंजना को निकट से देखा। वह प्रतिपदा के चन्द्र की तरह क्षीण, द्वार के निकट स्तम्भ का आश्रय लिए निर्निमेष राह देखती हुयी खड़ी थी। इधर-उधर बिखरे रूखे केशों से उसका ललाट ढँका हुआ था। शिथिल भुजलताएँ उसके नितम्बों की ओर लटकी हुयी थी। ताम्बूल रागहीन उसके अधर फीके पड़े गए थे, अश्रुजल से उसका गण्डस्थल सिक्त था। नेत्रों में काजल भी नहीं था।

पवनंजय उसे देखकर मन ही मन सोचने लगे, यह दुष्टा कितनी निर्लज्ज और निर्भीक है। मैंने तो इसे पहले ही पहचान लिया था। माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन न हो मात्र इसीलिए इससे विवाह कर लिया था।

पवनंजय जब इस प्रकार सोच रहे थे तभी हाथ जोड़े अंजना आगे आकर उनके पैरों पर गिर पड़ी और बोली, 'स्वामी, आप सबसे मिले, सबसे बोले किन्तु मेरी तो खबर भी नहीं ली फिर भी मैं आप से प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे भूल मत जाइएगा। आपकी यात्रा सुखकर हो, कार्य सिद्ध कर आप शीघ्र लौट आएँ।'

सच्चरित्रा दीन सती अबला की इस प्रार्थना का कोई उत्तर दिए बिना ही वे वहाँ से विजय के लिए निकल पड़े।

पतिकृत अवज्ञा से और दुःखी होकर पति वियोग में विधुरा अंजना किसी प्रकार अपने कक्ष में लौटी और जलभेदित नदी तट की तरह जमीन पर गिर पड़ी।

पवनंजय वहाँ से आकाश पथ द्वारा मानस सरोवर के तट पर आए। सन्ध्या हो जाने के कारण रात्रि वहीं व्यतीत करने का निश्चय कर एक प्रासाद का निर्माण किया। विद्याधरों की विद्या सभी मनोरथ पूर्ण करने में सक्षम होती है।

मानस सरोवर के तटपर स्व पर्यंक पर लेटे पवनंजय ने एक प्रिय वियोग से पीड़ित चक्रवाकी को देखा। वह पूर्व संग्रहित मृणाल लता को मुँह नहीं लगा रही थी। जल शीतल था फिर भी वह उसका स्पर्श नहीं कर रही थी। मानो उसके लिए वह उष्ण हो गया था। चन्द्रकिरण भी मानों अब उसके लिए अग्नि वर्षण कर रही हो ऐसी दुःखदायी हो गयी थी अतः वह करुण स्वर में केवल क्रन्दन कर रही थी।

चक्रवाकी की यह दशा देखकर पवनंजय सोचने लगे—ये चक्रवाकियाँ

समस्त दिन ही पति के साथ रहती है। उनका विच्छेद केवल रात्रि में ही होता है। फिर भी इस अल्प वियोग को यह सह नहीं पा रही है, फिर विवाह कर मैंने जिसे त्याग दिया—पर-स्त्री की तरह मैंने जिससे बात तक नहीं की, जिसकी खोज-खबर भी नहीं ली, नहीं जानता वह पर्वत-से इस दुःख को सहन कर कैसे बची हुई है? धिक्कार है मुझसे अविवेकी को! मैंने उसे अपमानित किया है—वह निश्चय ही मर जाएगी। तब उसकी हत्या के पाप के कारण मैं किसी को मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहूँगा।

तब पवनंजय ने स्वमित्र प्रहसित को बुलाकर सारी बाते कही कारण मित्र के अतिरिक्त हृदय की बात और किससे कही जा सकती है?

प्रहसित बोला, 'बहुत दिनों के पश्चात ही सही किन्तु तुम्हें अपनी भूल मालूम हुई यह बहुत अच्छा है। किन्तु वह वियोगिनी सारस पक्षिणी की भाँति जीवित भी है या नहीं कौन जाने? बन्धु, यदि वह जीवित है तो तुम अभी जाकर उसको आश्वस्त करो। तुम तुरन्त उसके पास जाओ, उसे सान्त्वना दो और उसकी आज्ञा लेकर विजय के लिए पुनः यहाँ लौट आओ।'

उसके इच्छानुरूप समान-विचारशील मित्र की प्रेरणा से पवनंजय मित्र सहित, आकाश पथ से अंजना सुन्दरी के प्रासाद में गए और दरवाजे की आड़ में रहे। पहले प्रहसित ने अंजना के कक्ष में प्रवेश किया। उसने देखा—अल्प जल में रही मछली की तरह अंजना बिछौने पर पड़ी छटपटा रही थी। कमलिनी जैसे हिम से पीड़ित होती है उसी भाँति वह चन्द्र-ज्योत्सना से पीड़ित हो रही थी। हृदय के उत्ताप से हार के मोती गल-गल कर गिर रहे थे। दीर्घ निःश्वास के कारण उसकी अलकावली बिखरी हुयी थी। असहाय पड़ी वह हाथों को इधर-उधर फैंक रही थी। फलतः कंकण की मणियाँ टूटने लग गयी थी। उसकी सखी बसन्ततिलका उसे धैर्य रखने को कह रही थी किन्तु उसके नेत्रों की दृष्टि और हृदय शून्य होने के कारण वह काष्ठ-पुत्तलिका-सी लग रही थी।

व्यंतर की भाँति प्रहसित को सहसा कक्ष में प्रवेश करते देख अंजना भयभीत हो गयी। फिर भी साहस संचय कर बोल उठी, 'तुम कौन हो? पर-पुरुष होकर तुम यहाँ क्यों आए हो? तुम यहाँ से तुरन्त बाहर निकल जाओ।' फिर बसन्त तिलका की ओर देखकर बोली, 'तू इसका हाथ पकड़ कर बाहर निकाल दे। मेरे कक्ष में मेरे पति पवनंजय के अतिरिक्त कोई भी आने का अधिकारी नहीं है। तू खड़ी-खड़ी क्या देख रही है? इसे शीघ्र यहाँ से बाहर निकाल दे।'

अंजना की बात सुनकर प्रहसित उसे प्रणाम कर बोला, 'दीर्घ दिनों के पश्चात् उत्कण्ठित होकर पवनंजय के समागम की अपनी शुभेच्छा प्रकट कर रहा हूँ। कामदेव के मित्र जिस प्रकार बसन्त है उसी प्रकार मैं पवनंजय का मित्र प्रहसित हूँ। निश्चय जानिए जब मैं आया हूँ तो पवनंजय भी आया है।'

प्रहसित की बात सुनकर अंजना बोली, 'प्रहसित, भाग्य ने पहले से ही मुझे हास्यास्पद बना रखा है अब तुम और बना रहे हो। यह उपहास का समय नहीं है किन्तु इसमें किसी का क्या दोष? सब कुछ मेरे कर्म दोष से ही घटित हुआ है। यदि भाग्य ही मुझ पर प्रसन्न होता तो ऐसे कुलीन पति मेरा परित्याग क्यों करते? आज बाईस वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी न जाने क्यों मेरे प्राण नहीं निकलते?'

उसकी ऐसी बात सुनकर उसके दुःख के कारणरूप पवनंजय ने कक्ष में प्रवेश किया और वाष्पसिक्त कण्ठ से बोले, 'प्रिये, मैं मूर्ख होकर भी स्वयं को महाज्ञानी समझ रहा था। निर्दोष पत्नी को सदोष समझकर विवाह के पश्चात् ही उसका परित्याग कर दिया। मेरे ही कारण तुम्हारी यह दशा हुई है। सम्भवतः विरह में तुम्हारी मृत्यु ही हो जाती। किन्तु मेरे भाग्यवश ही तुम जीवित हो।'

इस प्रकार कहते हुए अपने पति को देखकर अंजना खड़ी हुयीं और पर्यंक पर भार देकर खड़ी रही। हस्ती जिस प्रकार सूँड़ से लता को वेष्टित करता है उसी प्रकार पवनंजय ने अंजना को वेष्टित कर पर्यंक पर बैठाया और बोले, 'प्रिये, मुझसे क्षुद्र व्यक्ति को, जिसने तुम-सी निरपराध पत्नी को सताया, क्षमा करो।'

पवनंजय का यह कथन सुनकर अंजना बोली, 'नाथ, आप ऐसी बात मुँह पर न लाएँ, मैं तो चिरकाल से आपकी दासी हूँ एतदर्थ मुझसे क्षमा याचना करना आपके लिए अनुचित है।'

तत्पश्चात् बसन्ततिलका और प्रहसित कक्ष से बाहर निकल गए। कारण पति-पत्नी के एकान्त मिलने के समय विवेकशील व्यक्ति उस स्थान का परित्याग कर देते हैं।

तदुपरान्त पवनंजय और अंजना स्वच्छन्द यौवन सुख का भोग करने लगे। रति-रभस में वह रात्रि उनके लिए एक मुहूर्त में व्यतीत हो गयी। सुबह का प्रकाश देखते ही पवनंजय बोले, 'प्रिये, मैं विजय के लिए प्रस्थान करता हूँ। यदि गुरुजन जान जाएँगे कि मैं लौटकर आया हूँ तो अच्छा नहीं

होगा। तुम मन में कोई खेद नहीं रखो। मैं रावण का कार्य सिद्ध कर शीघ्र ही लौट रहा हूँ। तबतक अपनी सखी के साथ सुखपूर्वक समय व्यतीत करो।'

अंजना बोली, 'आप जैसे वीर के लिए वह कार्य सिद्ध ही है समझ लीजिए। यदि आप मुझे जीवित देखना चाहते हैं तो कार्य सिद्धि के पश्चात तुरन्त लौट आएँ। तदुपरान्त मैंने आज ही ऋतु स्नान किया है। अतः यदि मैंने गर्भधारण कर लिया तो आपकी अनुपस्थिति के कारण दुर्जन मेरी निन्दा करेंगे।'

पवनंजय बोले, 'मानिनी, मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा। मेरे लौट आने पर कोई नीच भी तुम्हारी निन्दा नहीं कर सकेगा। फिर भी मैं आया था इसके प्रमाण रूप मेरी नामांकित मुद्रिका तुम्हें दे रहा हूँ। यदि ऐसी परिस्थिति आ ही जाय तो तुम उनको यह मुद्रिका दिखा देना।'

ऐसा कहकर पवनंजय प्रहसित सहित आकाश पथ से स्वसैन्य में लौट गए। वहाँ से देवों की तरह आकाश पथ से ही लंका पहुँचे। लंका में जाकर उन्होंने रावण को प्रणाम किया। तरुण सूर्य-से कान्तिमान रावण और पवनंजय अपनी-अपनी सेना लेकर वरुण के साथ युद्ध करने के लिए पाताल में प्रविष्ट हुए।

अंजना सुन्दरी के उसी दिन गर्भ रह गया। फलतः उनके सारे अवयव सुन्दर हो गये। कपोल पाण्डुवर्ण हो गये, स्तनाग्र श्याम वर्ण। गति मन्द हो गयी, नेत्र विशेष रूप से विशाल और उज्ज्वल। इसके अतिरिक्त गर्भ के अन्य लक्षण भी उसकी देह पर स्पष्ट रूप से दिखने लगे। यह देखकर उसकी सास् तिरस्कारपूर्वक बोली, 'ओ पापिनी, उभय कुल को कलंकित कर तूने यह क्या किया? पति जब विदेश में है तब तू गर्भिणी कैसे हो गयी? मेरा पुत्र तुझसे घृणा करता था। मैं सोचती थी वह अज्ञानी है जो तुझे दूषित समझता है। मैं तो आजतक नहीं जान पायी कि तू व्यभिचारिणी है।'

इस प्रकार तिरस्कार होने पर अंजना ने अश्रु प्रवाहित कर पति समागम की साक्षी रूप वह मुद्रिका दिखायी। उसे देखकर केतुमती और जल उठी और लज्जावनत अंजना को घृणा भाव से बोली, 'ओ दुष्टा, तेरा पति तेरा नाम तक नहीं लेता था। उसके साथ तेरा समागम कैसे हो सकता है? व्यभिचारिणी स्त्रियाँ लोगों को ठगने के ऐसे कितने ही उपाय जानती है। स्वच्छन्दचारिणी, तू क्यों यहीं खड़ी है? अभी तुरन्त मेरा गृह छोड़कर पितृगृह चली जा। तुझ जैसी स्त्री के लिए मेरे घर में कोई जगह नहीं है।'

इस प्रकार तिरस्कार कर केतुमती ने निर्दया राक्षसी की तरह अपने अनुचरों को आदेश दिया इसको लेजाकर इसके पितृगृह छोड़ आओ।

अनुचर अंजना और बसन्त तिलका को यान में बैठाकर महेन्द्र नगर ले गए और नगर से बाहर उन्हें यान से उतारकर अश्रुसिक्त नेत्रों से माँ की तरह अंजना को प्रणाम कर उससे क्षमा माँगी और चले गए। कहा भी गया है उत्तम सेवक स्वामी के परिवार के साथ स्वामी के जैसा ही व्यवहार करते है।

उसी समय सूर्य अस्त हो गया। मानों अंजना का दुःख देख न पा सकने के कारण वह अस्त हो गया। सचमुच, सत्पुरुष सज्जनों की विपत्ति नहीं देख सकते।

जैसे-जैसे रात गहरी होती गयी, उल्लू घर्र-घर्र शब्द करने लगे, शृगाल चिल्लाने लगे, सिंह गर्जन करने लगे, शिकारी श्वापद दरिन्द आदि विचित्र शब्द करने लगे। पिंगल साँप राक्षसों के वाद्य यंत्र की भाँति हिस-हिस शब्द करने लगे। इन शब्दों को सुनकर मानो वह कुछ नहीं सुन रही है, बहरी हो गयी है, इस प्रकार बसन्त तिलका सहित अंजना ने उस भयंकर रात्रि को वहीं जागते हुए व्यतीत की।

सबेरा होते ही वह दीन अबला लज्जा से संकुचित बनी परिवार रहित भिक्षु की भाँति पितृगृह के द्वार पर जा खड़ी हुयी। द्वार रक्षकों ने बसन्त तिलका से सब कुछ अवगत कर राजा महेन्द्र के पास जाकर यथावत वर्णन किया।

सब कुछ सुनकर राजा महेन्द्र का मस्तक झुक गया। उनका मुख क्रमशः काला होने लगा। वे सोचने लगे कर्म विपाक की तरह स्त्रियों का चरित्र भी अचिन्त्य है। कुलटा अंजना मेरे कुल को भी कलंकित करने के लिए यहाँ आयी है। काजल का एक कण भी पूरे वस्त्र को दूषित कर देता है।

राजा महेन्द्र जब इस प्रकार सोच रहे थे तब उनका नीतिवान पुत्र प्रसन्नकीर्ति अप्रसन्न होकर बोला, 'पिताजी, उस दुष्टा को तुरन्त यहाँ से विदा कर दीजिए। उसने हमारे कुल को कलंकित किया है। सर्प द्वारा काटी हुयी अंगुली को क्या बुद्धिमान काटकर नहीं फेंक देते?'

उसी समय महोत्साह नामक मंत्री बोला, 'राजन्, ससुराल में दुःख मिलने पर कन्याएँ पितृगृह में आश्रय लेती है। यह भी तो हो सकता है सास ने उस पर कुपित हो जाने के कारण मिथ्या दोषारोपण कर उसे घर से निकाल दिया है। अतः जब तक दोषी या निर्दोषी प्रमाणित नहीं हो जाती तब तक गुप्त रूप से उसका पालन करें। अपनी कन्या समझ कर उस पर कुछ दया करें।'

राजा बोले, 'सासुएँ तो ऐसी ही होती हैं किन्तु बहुओं का ऐसा चरित्र कहीं नहीं मिलता। मैंने यह भी पहले सुना था कि पवनंजय अंजना को चाहते नहीं हैं। अंजना पर उनका स्नेह नहीं था। तब पवनंजय द्वारा वह गर्भ धारण कैसे कर सकती है? अतः वह सर्वथा दोषी है, उसकी सास ने ठीक ही किया है कि उसको घर से निकाल दिया। यहाँ से भी उसे तुरन्त निकाल दो। मैं उसका मुँह भी देखना नहीं चाहता।'

राजा का यह आदेश प्राप्त कर द्वार रक्षकों ने अंजना को वहाँ से चले जाने को कहा। अंजना दीन बनी रोते-रोते वहाँ से चली गयी। लोग दुःखी मन से उसकी दुर्दशा देखने लगे।

भूख प्यास से पीड़ित, क्लान्त, दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुयी, अश्रु प्रवाहित करती हुयी, पाँवों में काँटे चुभ जाने के कारण जो रक्त बह रहा था उससे धरती को आरक्त करती हुयी अंजना धीरे-धीरे जा रही थी। दो कदम चलते न चलते वह गिर-गिर जा रही थी, ऐसे समय वह किसी वृक्ष का सहारा लेकर विश्राम कर लेती। इस भाँति दिशा-विदिशाओं को क्रन्दन से गुंजित करती हुई अंजना सखी के साथ जा रही थी। किन्तु वह जिस किसी भी ग्राम या नगर में गयी सभी उसे भगाने लगे। क्योंकि राजपुरुषों ने पहले ही जाकर उसको आश्रय न देने की सूचना सबको दे दी थी। इसलिए उसे कहीं भी रहने का स्थान नहीं मिला।

इसी प्रकार चलती हुयी अंजना ने एक महावनमें प्रवेश किया। वहाँ पर्वत श्रेणियों से घिरे एक वृक्ष के नीचे बैठकर वह विलाप करने लगी—'हाय, मैं कितनी हतभागिन हूँ कि गुरुजनों ने मेरे अपराध पर विचार किए बिना ही दण्ड दे दिया। सासु केतुमतीजी, आपने अच्छा ही किया, कुल को कलंकित होने से बचा लिया। पिताजी, आपने भी सम्बन्धियों के भय से ठीक ही विवेचना की। दुःखी लड़कियों के लिए माँ आश्रय रूप होती है किन्तु माँ, तुमने भी पिताजी की इच्छानुसार मेरी उपेक्षा की। भाई, तुम्हारा तो पिताजी के रहते दोष ही क्या है? हे प्रिय, आपके दूर रहने से सभी मेरे शत्रु हो गए हैं। सर्वथा पतिहीना एक दिन भी जीवित नहीं रहती किन्तु अभागियों में प्रमुख मैं जीवित हूँ।'

इस प्रकार विलाप करती हुयी अंजना को उसकी सखी उस गुफा में ले गयी जहाँ चारण मुनि अमितगति ध्यान कर रहे थे। चारण मुनि को नमस्कार कर विनीतभाव से वे उनके सम्मुख बैठ गयी। ध्यान समाप्त होने

पर दाहिना हाथ उठाकर मुनि ने मनोरथपूर्ण और कल्याणकारी, आनन्द प्रदान करने वाली धारा की तरह 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद दिया ।

तब बसन्त तिलका ने उन्हें पुनः प्रणाम कर अंजना की सारी दुःख कथा सुनायी । तदुपरान्त पूछा—'भगवन्, अंजना के गर्भ में कौन आया है ?' मुनि ने उत्तर दिया—

'इस भरत क्षेत्र में मन्दर नामक एक नगर है । वहाँ प्रियनन्दी नामक एक वणिक रहता था । उसकी जया नामक पत्नी से चन्द्र-सा कल्पनिधि और दम (इन्द्रिय दमन) प्रिय दमयन्त नामक एक पुत्र हुआ । एकबार वह उद्यान में खेलने गया । वहाँ उसने स्वाध्यायलीन एक मुनिराज को देखा । उसने उनसे शुद्ध मन से धर्म श्रवण किया । प्रतिबोध पाकर उसने सम्यक्त्व के विविध प्रकार के नियम ग्रहण किए । तभी से वह मुनियों के योग्य-दान देने लगा । वह तप और संयम में ही एक मात्र निष्ठा रखता था । अतः कालक्रम से मृत्यु के पश्चात् परमार्द्धिक देव के रूप में उत्पन्न हुआ । वहाँ से च्युत होकर वह जम्बू द्वीप के मृगांकपुर के राजा हरिश्चन्द्र की पत्नी प्रियंगु लक्ष्मी के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ । उसका नाम रखा गया सिंहचन्द्र । सिंहचन्द्र जैन धर्म स्वीकार और पालन कर मृत्यु के पश्चात् देव रूप में उत्पन्न हुआ । वहाँ से च्युत होकर वह वैताढ्य पर्वत के वरूण नामक नगर के राजा सुकण्ठ की रानी कणकोदरी के गर्भ में आया । जन्मग्रहण करने के पश्चात् इसका नाम रखा गया सिंहवाहन । सिंहवाहन ने बहुत दिनों तक राज्य करने के पश्चात् विमलनाथ प्रभु के तीर्थ में लक्ष्मीधर मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली । दुष्कर तप कर मृत्यु के पश्चात् वह लान्तक देवलोक में देव हुआ । वही वहाँ से च्यवकर अब तुम्हारी सखी अंजना के गर्भ में आया है । यह पुत्र गुणों की खान, महापराक्रमी, विद्याधरों का राजा, चरम शरीरी और विमलमना होगा ।'

'अब तुम अपनी सखी के पूर्वजन्म की कथा सुनो—कनकपुर नगर में महापराक्रमियों के शिरोमणि कनकरथ नामक एक राजा थे । उनके कनकोदरी और लक्ष्मीवती नामक दो रानियाँ थी । उनमें लक्ष्मीवती श्रद्धालु श्राविका थी । वह अपने गृह चैत्य में रत्नमय जिन प्रतिमा स्थापित कर सुबह-शाम दोनों समय उसकी पूजा करती, वन्दना करती । कनकोदरी उससे ईर्ष्या रखती थी । अतः उसने एक दिन लक्ष्मीवती की जिन प्रतिमा चोरी कर कूड़े में उठाकर फेंक दी । उसी समय जयश्री नामक एक आर्या विहार करती हुयी वहाँ

आयीं। उन्होंने कनकोदरी को जिन प्रतिमा कूड़े में फेंकते देख लिया था। वे बोली, 'तुमने यह क्या किया? भगवान की प्रतिमा को वहाँ फेंक कर तुमने अपनी आत्मा को संसार के अनेक दुःखों का कारण बना लिया।'

'साध्वी श्री के यह वचन सुनकर कनकोदरी को पश्चाताप हुआ। वह तत्क्षण प्रतिमा को वहाँ से उठाकर, शुद्ध कर, क्षमा याचना करती हुयी जहाँ से उस प्रतिमा को लायी थी वहीं ले जाकर रख दिया। उस दिन से वह सम्यक्त्व धारण कर जैन धर्म का पालन करने लगी। अनुक्रम से आयुष्य पूर्ण होनेपर वह सौधर्म देवलोक में देवी रूप में उत्पन्न हुयी। वहाँ से च्युत होकर हेन्द्र राजा की कन्या अंजना ने तुम्हारी सखी रूप में जन्म ग्रहण किया है। पूर्व जन्म में अंजना ने जिन प्रतिमा को अशुद्ध स्थान में फेंक दिया इसीलिए उसे ऐसा कष्ट प्राप्त हुआ है। तुमने भी उस जन्म में दुष्कर्म में उसकी सहायता की थी, अनुमोदना की थी, अतः इस समय तुम भी इसके साथ-साथ दुःख पा रही हो। किन्तु उस दुष्ट कर्म का फल अब प्रायः शेष हो गया है। अब तुमलोग इस भव में सुख प्रदान करने वाला जैन धर्म ग्रहण करो। शीघ्र ही अंजना का मामा अकस्मात यहाँ आकर तुमलोगों को ले जाएगा। उसके थोड़े दिनों पश्चात् ही पति से मिलन होगा।'

इस प्रकार अंजना को उसका पूर्वभव सुनाकर सखी सहित उसको जैन धर्म में सुस्थित कर मुनि गरूड़ की भाँति आकाश में उड़ गए। इसी बीच उन्होंने वहाँ एक सिंह को आते देखा। सिंह अपनी पूँछ जमीन पर पछाड़ रहा था जैसे वह धरती को विदीर्ण कर देगा। अपनी गर्जना से वह दिशाओं को पूरित कर रहा था। हाथी के खून से लिप्त वह बड़ा विकट लग रहा था। उसके नेत्र दीप की भाँति जल रहे थे। उसकी डाढ़े बज्र की तरह दृढ़ थीं। उसके दाँत करात की भाँति तीक्ष्ण और क्रूर थे। उसकी केशर अग्नि शिखा की तरह उद्दीप्त थी। उसके नाखून लोहे की खीलों के तरह तीक्ष्ण थे। वक्षदेश पर्वत शिला की भाँति कठोर था। उसे अपनी ओर आते देखकर नेत्र नीचे कर वे काँपने लगीं। लग रहा था मानों वे धरती में समा जाना चाहती हैं। भयभीत हरिणी की तरह वे स्तब्ध हो गयीं। उसी समय उस गुफा का अधीश्वर मणिचूल नामक यक्षने शरभ रूप धारण कर उस सिंहको मार डाला। फिर स्व-स्वरूप धारणकर अंजना और बसन्त तिलका को प्रसन्न करने के लिए पत्नी सहित अर्हत् का गुणगान करने लगा। अतः अंजना और बसन्ततिलका ने उस स्थान का परित्याग नहीं किया। उसी गुफा में मुनि सुव्रत स्वामी की प्रतिमा स्थापित कर उनकी पूजा करते हुए वे दिन व्यतीत करने लगी।

यथा समय सिंहिनी जैसे सिंह को जन्म देती है इसी प्रकार अंजना ने पदतल में ब्रज्र अंकुश और चक्र चिह्न युक्त एक पुत्र को जन्म दिया। बसन्त तिलका ने हर्षित होकर अग्नि जलादि लाकर उसका प्रसूति कर्म सम्पन्न किया। पुत्र को गोद में लेकर दुःखित अंजना अश्रु प्रवाहित कर यहाँ तक कि उस गुफा को क्रन्दनमय कर विलाप करने लगी—'हाय पुत्र, इस घोर वन में तेरा जन्म होने के कारण मैं किस प्रकार तेरा जन्मोत्सव करूँ ?'

उस विलाप से आकृष्ट होकर प्रतिसूर्य नामक एक विद्याधर उनके निकट आया और मधुर कण्ठ से उनके दुःख का कारण पूछा। सखी बसन्ततिलका ने अश्रुसिक्त कण्ठ से अंजना के विवाह से लेकर पुत्र जन्म तक की कथा सुनायी। वह विवरण सुनकर उस विद्याधर के नेत्रों में अश्रु उमड़ आए। बोला—'वत्से, मैं हनुपुर के राजा चित्रभानु तथा रानी सुन्दरीमाला का पुत्र हूँ, तुम्हारी माँ मानसवेगा का भाई चित्राम का मैं अनुज हूँ। सौभाग्य वश ही मैं तुम्हें जीवित देख सका हूँ। अब तुम्हें कोई चिन्ता नहीं करनी होगी।'

अपने मामा को देखकर अंजना अधिक रोने लगी। स्वजन-मित्र के मिलने पर प्रायः दुःख दुगुना हो जाता है। उसे रोते देख प्रतिसूर्य ने विभिन्न प्रकार से उसे आश्वासित कर शान्त किया। तदुपरान्त उनके साथ आए नैमित्तिक से जातक के सम्बन्ध में पूछा। नैमित्तिक ने कहा, 'यह बालक ऐसे लग्न में जन्मा है जब की समस्त ग्रह शुभ और बलवान है। फलतः यह महापुण्यवान राजा होगा और इसी जीवन में ही मुक्त होकर सिद्ध पद प्राप्त करेगा। आज चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी है और वार रविवार है। सूर्य उच्च स्थान प्राप्त कर मेष राशि में अवस्थित है। चन्द्र मकर का होकर मध्यभवन में स्थित है। मंगल मध्यम होकर वृष राशि में आया है। बुध मध्यता से मीन राशि में बैठा है। गुरु उच्च स्थान प्राप्त कर कर्क राशि में प्रवेश कर रहा है, शनि भी मीन राशि में है। मीन लग्न का उदय हुआ है और ब्रह्म योग है। अतः इसकी जन्म कुण्डली सब प्रकार से शुभ है।'

तब प्रतिसूर्य बसन्ततिलका और अंजना को स्वविमान में बैठाकर अपने नगर को रवाना हुआ। विमान की छत पर एक रत्नमय झूमका लटक रहा था। उसको लेने की इच्छा से बालक माँ की गोद से उछला, उछलते ही वह विमान से नीचे पर्वत पर जा गिरा मानो आकाश से बज्र गिरा हो। उसके आघात से पर्वत चूर-चूर हो गया। पुत्र को विमान से गिरते देख अंजना चिल्लाकर रो उठी और छाती पीटने लगी। उसका क्रन्दन पर्वत गुफा में प्रतिध्वनित होकर ऐसा लगा मानो अंजना के साथ पर्वत भी रो रहा है।

प्रतिसूर्य तत्काल नीचे उतरा और अक्षत बालक को धरोहर रखे धन की भाँति अंजना को सौंप दिया। फिर मन की गति से वेगवान् उस विमान द्वारा वह अपने नगर पहुँचा। नगर आनन्दोत्सव में झूम उठा। अंजना को अन्तःपुर में भेज दिया गया। अन्तःपुरिकाओं ने कुलदेवी की तरह उसकी पूजा और सम्मान किया।

जन्म के पश्चात वह पहले हनुपुर आया इसलिए प्रतिसूर्य ने जातक का नाम हनुमान रखा। विमान से गिरने पर उसके शरीर के आघात से पर्वत चूर-चूर हो गया था इसलिए उसका द्वितीय नाम श्री शैल रखा गया।

उधर रावण की सहायतार्थ गए पवनंजय ने वरूण से सन्धि कर खर और दूषण को मुक्त किया। रावण भी सपरिवार लंका लौट गया। पवनंजय रावण की अनुमति लेकर स्व नगर को लौट आए। पिता-माता को प्रणाम कर वे अंजना के महल में गए किन्तु ज्योत्सना हीन चन्द्र की तरह अंजना हीन प्रासाद को देखकर दुःखी हुए। वहाँ की एक दासी से उन्होंने पूछा—'अंजन की तरह नेत्रों को परितृप्तकारी मेरी अंजना कहाँ है?' वह बोली, आपके युद्ध में जाने के कुछ दिनों पश्चात् अंजना को गर्भवती देखकर महारानी केतुमती ने उन्हें घर से निकाल दिया। उनकी आज्ञा से हिरणी की तरह भयभीत अंजना को अनुचरगण महेन्द्रनगर ले गए। वे दुष्ट उन्हें महेन्द्रनगर के निकट एक वन में छोड़ आए।'

यह सुनकर कबूतर की तरह स्वप्रियतमा से मिलने को उत्सुक पवनंजय पवन वेग से अपने श्वसुरालय गए। वहाँ भी उसको न देखकर एक दासी से पूछा—'मेरी पत्नी अंजना यहाँ आयी थी क्या?' उसने उत्तर दिया, 'वह अपनी सखी बसन्ततिलका के साथ यहाँ आयी थी। किन्तु, उस पर व्यभिचार का आरोप होने के कारण उनके पिता ने उन्हें निकाल दिया।'

यह सुनकर व्रजाहत-से आहत पवनंजय ने वन में प्रवेश किया। अरण्य में पर्वतों में उसे खोजने लगे किन्तु कहीं भी खोज न पाकर अन्त में आपभ्रष्ट देव की तरह स्वमित्र प्रहसित से बोले, 'मित्र, तुम मेरे पिता से जाकर कहो सारी पृथ्वी खोज डालने पर भी अंजना को कहीं नहीं पाया। मैं फिर वन में जाकर उसे खोजता हूँ। यदि मिली तो ठीक नहीं तो मैं अग्नि में प्रवेश करूँगा।'

[क्रमशः

पुस्तक समीक्षा

जैन निर्देशिका, सम्पादक : प्रदीप चोपड़ा, प्रकाशक : श्री जैन समाज, दुर्गापुर, १९९१, पृ० : ५८+२०, मूल्य : २५/-

आलोच्य 'जैन निर्देशिका' जैसा कि नाम से ही प्रकट है वर्द्धमान जिले के अन्तर्गत दुर्गापुर में बसे जैनों की डाइरेक्टरी है। किन्तु मात्र डाइरेक्टरी नहीं, इसमें जैन धर्म के वैशिष्ट्य पर, दर्शन पर, इसकी प्राचीनता पर, अहिंसा पर प्रकाश डालने वाले १२ चुने हुए लेख हैं जो कि न केवल सुप्रसिद्ध जैन विद्वानों एवं संतों द्वारा ही लिखे गए हैं बल्कि जैनेतर विद्वानों के भी मार्मिक एवं महत्वपूर्ण लेख है जिसने ग्रन्थ की मुख्यता को बढ़ाकर चिन्तनीय एवं मननीय बना दिया है क्योंकि जैनेतर विद्वानों के लेख साम्प्रदायिकता से रहित तटस्थ होकर लिखे गए हैं अतः सत्य को शोधपूर्ण ढंग से उजागर करते हैं।

दुर्गापुर इलाके में बिखरी, अवहेलित जैन कला की निदर्शनस्वरूप भग्न मूर्तियों के, मन्दिरों के दुर्लभ चित्र तथा आमुख पृष्ठ पर छपा ऋजुबालुका तट पर भगवान महावीर के केवलज्ञान का रंगीन चित्र ने निर्देशिका के सज्जा-सौन्दर्य को निखारा है।

—श्रीमती राजकुमारी बेगानी

संकलन

संस्कार निर्माण में नारी की भूमिका ॥

संस्कार मनुष्य के जन्म से पूर्व गर्भ में आने से ही प्रारम्भ हो जाते हैं। चाहे वह धार्मिक—क्षमा, दया, त्याग, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इत्यादि हो, अन्यथा वे अधार्मिक ही क्यों न हों। बालक के गर्भ में आते ही मातृत्व की जिम्मेदारियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं। माता गर्भकाल में अपने खान-पान रहन-सहन, सत्साहित्य के पठन-पाठन, प्रवचन, स्वाध्याय आदि के द्वारा अपने मनोविचारों को सुशांत रखती हैं। बालक को जन्म के साथ ही दूध के साथ उत्तम आदर्शों का पालन कराती हैं। बच्चों को सुलाते-सुलाते लोरियों के रूप में वीर गाथाएँ और आत्मस्वरूप की शिक्षा भी माताओं ने अपने शिशुओं को दी है।···

भारतीय महिलाओं ने अपने पातिव्रत्य धर्म के बल पर अपने शील और सतीत्व से विभिन्न विकासशील भौतिकवादी देशों के सम्मुख आदर्श मिसाल प्रस्तुत की है; जिनमें महासती सीता, सावित्री, द्रौपदी, मन्दोदरी, अंजना, मनोरमा, चन्दनबाला का नाम अद्यावधि अत्यन्त आदरपूर्वक स्मरण किया जाता है। इसी प्रकार अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी को उनकी माँ ने ही मांस-शराब-व्यभिचार त्याग का सन्देश दिया था।···

माताएँ वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप जीवन के संघर्षमय युग में अवश्य अपने बच्चों को पूर्णतया संस्कारित नहीं कर पा रही हैं जिसका प्रतिफल देश की या समाज की विभिन्न समस्याओं के रूप में हमारे सामने है। पुनरपि जो अच्छाई है वह माताओं की ही देन है। अतएव स्वयमेव स्पष्ट है कि धार्मिक संस्कार प्रदान करके संस्कृति के निर्माण में उसकी सार-संभाल करने में और उसे आगे सुरक्षित रखने में महिलाओं का अविस्मरणीय योगदान रहा है।

—डॉ० सुषमा जैन

प्राकृत विद्या, जनवरी-मार्च '९२

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

जर्नल अव दि ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट ॥ मार्च-जून १९९०

इस अंक में है 'Gujrati Literature of the Jainas' (Bhogilal J. Sandesara).

णाणसायर ॥ जून १९९२

इस अंक में है 'धर्म और पुण्य का विश्लेषण' (पं० पन्नालाल जैन), 'सर्व धर्म समभाव' (डॉ० महावीर सरण जैन), 'द्वितीय जम्बूद्वीप' (आचार्य गोपीलाल 'अमर'), 'जैन भक्त कवियों के भाव एवं विचार : प्रकृति-बिम्बों के झरोखे से' (डॉ० गंगाराम गर्ग), 'माण्डवगढ़ के पेथड़शाह ने कितने जिन मन्दिर बनवाये ?' (म० विनयसागर), 'मानव संस्कृति के विकास में श्रमण संस्कृति : जैन धारा की भूमिका' (डॉ० रवीन्द्र कुमार जैन), 'भगवान महावीर युगीन राजतन्त्र और शासन' (डॉ० पवन कुमार जैन), 'मराठी जैन वाङ्मय' (डॉ० सुभाषचन्द्र अक्कोले), 'धारा के आचार्य नयनंदी और उनके गुरुजन' (कुन्दनलाल जैन), 'जैन पुराण साहित्य' (डॉ० कमलेश जैन), 'तिलक-मंजरीकार धनपाल की अन्य रचनाएँ' (डॉ० हरिनारायण दीक्षित), 'मुनिश्री ज्ञानसागर की हिन्दी रचनाएँ' (डॉ० किरण टण्डन), 'जैन दर्शन में स्वप्न विज्ञान' (रतनलाल जैन), 'भगवान नेमिनाथकालीन जैन संस्कृति', (डॉ० अनिरुद्ध कुमार शर्मा)।

तीर्थङ्कर ॥ मई १९९२

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'सम्प्रदाय निरपेक्ष बनिये' (डॉ० निजाम उद्दीन), 'अहिंसा : इतिहास के प्रपिप्रेक्ष्य में' (कन्हैयालाल सरावगी), 'पर्यावरण और जैन दायित्व' (सुरेन्द्र बोथरा), 'बीसवीं शताब्दी के सर्वप्रथम दिगम्बर मुनि' (डॉ० कु० अनीस फात्मा अंसारी)।

प्राकृत विद्या ॥ जनवरी-मार्च १९९२

इस अंक में है 'प्राकृत भाषा का महत्व' (स्व० पं० बेचरदास दोशी), 'जैन जीवन पद्धति और पर्यावरण शुद्धि' (डॉ० नरेन्द्र भानावत), 'आत्मशुद्धि में आहार का योगदान' (डॉ० राजेन्द्र कुमार बंशल), 'भारतीय संस्कृति में शाकाहार की अवधारणा' (सुदीप जैन), 'संस्कार निर्माण में नारी की भूमिका' (डॉ० सुषमा जैन), 'पर्यावरण के प्रति युवकों का दायित्व' (सुनील जैन), 'सुलोचना चरितम् की पाण्डुलिपियाँ' (कल्पना जैन)।

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Factory and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 30-2071

Branch Office :

Peerkhanpur : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-330
Vol. XVI No. 3 TITTHAYARA July 1992
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77